अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

प्राचीन कवियों व ज्ञानियों द्वारा विरचित
आध्यात्मिक भक्ति गीतों व स्तुतियों का
अनुपम संकलन

प्रकाशक
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ले मुम्बई

प्रथम संस्करण
आचार्य कुन्दकुन्द देव के आचार्य पदारोहण दिवस के
पावन अवसर पर प्रकाशित – मागशर वद 8
19 दिसम्बर 2019

मुमुक्षुता की प्रगटता अथवा भावना ही इस पुस्तक का मूल्य है। आध्यात्म संजीवनी के साथ, इसमें समाहित गीतों की संगीतमयी सीडी उपहार स्वरूप संलग्न है।

प्राप्ति स्थान –

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सीएचएस लि.
वी.एल.मेहता मार्ग, विलेपार्ले, पश्चिम, मुम्बई 400056
website : www.vitragvani.com, **e-mail:** info@vitragvani.com

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट) 364250, फोन : 02846244334, www.kanjiswami.org

तीर्थधाम मंगलायतन
अलीगढ़-सासनी मार्ग, सासनी-204216 हाथरस उत्तरप्रदेश
मोबा. 9997996346, 9756633800
Website : www.mangalaytan.com; e-mail:info@mangalayatan.com

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापू नगर, जयपुर - 302015
फोन. 0141 2707458, www.ptst.in

अहो भाव

वीतरागी देव–शास्त्र–गुरू इस पवित्र जैन शासन के मूल आधार हैं। धर्मी श्रावकों को इनके प्रति सहज ही परम उत्कृष्ट अहो भाव आता है। जिनधर्म के प्रति अपूर्व भावना से प्रेरित होकर हजारों वर्षों से प्राकृत, संस्कृत और वर्तमान में हिन्दी तथा अन्य प्रचलित देशीय भाषाओं में अनेक ज्ञानियों व आत्मार्थी कवियों ने आध्यात्मिक भक्ति साहित्य की रचना की है। इन कवि रत्नों में कविवर दौलतरामजी, श्री भूधरदासजी, श्री भागचन्दजी, श्री बुधजनजी, श्री द्यानतरायजी आदि द्वारा प्रसूत ये सभी भक्तियाँ भेद विज्ञान, वीतरागता, वैराग्य रस से सराबोर हैं। इन्हीं कवियों के भक्ति उपवन में से कुछ उत्कृष्ट भक्ति पुष्पों का संकलन यहाँ अध्यात्म संजीवनी व स्तवन संजीवनी के रूप में निबद्ध कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

इन आध्यात्मिक पदों को आत्मार्थी भव्य जीवों की आत्मरूचि पुष्ट करने, चिरकाल तक सुरक्षित रखने एवं आगामी पीढ़ी तक पहुँचाने की पवित्र भावना से ही श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई के द्वारा यह प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याम संजीवनी में ख्याति प्राप्त संगीतकार एवं गायक श्री आशित देसाई तथा सुरेश जोशी द्वारा संगीत की मधुर लहरियाँ तथा देश के कई प्रसिद्ध गायक कलाकारों द्वारा स्वर लहरियां प्रदान की गई हैं।

आशा है कि आत्मार्थीजन इस अध्यात्म भक्ति अमृत का रसपान कर ज्ञान और वैराग्य की प्रेरणा लेंगे।

– श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ले, मुम्बई

अनुक्रमणिका

एलबम-4 अध्यात्म संजीवनी		पेज नं.
1.	हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया..	1
2.	जिनवाणी जान सुजान रे...	3
3.	कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर...	5
4.	काल अचानक ही ले जायेगा...	7
5.	साधो ! छांडो विषय विकारी...	9
6.	करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान...	11
7.	राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो...	13
8.	घट में परमातम ध्याइये हो...	15
9.	हमको कछू भय ना रे...	17
10.	जिया तुम चालो अपने देश...	19
एलबम-5 अध्यात्म संजीवनी		
11.	प्रभु थारी आज महिमा..	22
12.	अब सबै जगद्वन्द मिटावो...	24
13.	ऐसे जैनी मुनि महाराज...	26
14.	जे दिन तुम, विवेक बिन खोये...	28
15.	ऐसा मोही क्यो न अधोगति जावै...	30
16.	छाँड़त क्यों नहिं रे...	32
17.	जीव तू भ्रमत सदैव अकेला...	34
18.	निर्ग्रन्थो का मार्ग...	36
19.	तोहि समझायो सौ-सौ बार..	38
20.	लागा आतमराम सो नेहरा...	40

चौथा एलबम

अध्यात्म संजीवनी

1 हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया...

हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया
हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया।
तुम हो परम दयालु जगत गुरु,
मैं भव भव दुख पाया ।। हे जिन.....

मोह महा दुठ घेर रहो मोहि,
भव कानन भटकाया।
नित निज ज्ञान चरन निधि विसरयो,
तन धन कर अपनाया ।। हे जिन.....

निजानन्द अनुभव पियूष तज,
विषय हलाहल खाया।
मेरी भूल मूल दुख दाई,
निमित्त मोह विधि थाया ।।हे जिन.....

सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिंग,
और न हेतु लखाया।
शिव स्वरूप, शिव मगदर्शक तुम,
सुयश मुनीगण गाया ।। हे जिन.....

तुम हो सहज निमित्त जग हित के,
मो उर निश्चय भाया।
भिन्न होहुं विधि तें सो कीजे,
'दौल' तुम्हें शिर नाया ।। हे जिन.....

हे जिनेन्द्र भगवान ! मैं आपकी शरण में आया हूँ क्योंकि आप परम दयालु और पूर्ण जगत के गुरू हैं तथा मैं अनंतकाल से इस संसार रूपी भवा टवी में दुःख पा रहा हूँ।

मुझे इस महा मोह रूपी दुष्ट ने अपने वश में करके कष्ट दिया है और इस संसार रूपी वन में भटकाया है। मैं सदा से ही अपने ज्ञान और चारित्र रूपी निज संपदा को भूलकर शरीर और धन रूपी जड़ संपदा को ही अपना मानता आया हूँ ।

हे प्रभो! मैंने अपनी आत्मानंद के अनुभव रूपी अमृत को त्यागकर विषय रूपी जहर का ही सेवन किया। मूल में तो मैंने मेरी स्वयं की भूल के कारण ही दुःख भोगा है, मोह कर्म तो निमित्त मात्र ही रहा है।

हे प्रभो! यह दुष्ट मोह आपके सम्मुख ही कमजोर पड़ता है, इसको नष्ट करने का मुझे और कोई कारण दिखाई नहीं देता। हे जिनेन्द्र देव! आप मोक्ष रूप परिणमित हो गये हैं और सभी को मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं इसलिये मुनिगण भी आपका यशगान करते हैं।

हे जिनदेव! आज मेरे ह्रदय में यह निश्चय हो गया है कि जगत के हित करने में आप ही सहज निमित्त हैं। अतः कवि दौलतराम जी आपको नमस्कार करते हुये भावना भाते है कि प्रभु आप ऐसा कार्य कीजिये कि जिस कारण से मैं कर्मों से सदा के लिये मुक्त हो जाऊँ।

2

जिनवाणी जान सुजान रे...

जिनवाणी जान सुजान रे, जिनवाणी जान सुजान रे ।।
लाग रही चिर तें विभावता, ताको कर अवसान रे ।।
जिनवाणी जान.....

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की कथनी को पहिचान रे ।
जाहि पिछाने स्व पर भेद सब जाने परत निदान रे ।।
जिनवाणी जान.....

पूरव जिन जानी, तिनही ने भानी संसृति वान रे ।
अब जाने अरु जानेंगे जे ते पावें शिवथान रे ।।
जिनवाणी जान....

कह तुषमाष मुनी शिवभूति, पायो केवलज्ञान रे ।
यों लखि 'दौलत' सतत् करो भवि, जिन वचनामृत पान रे ।।
जिनवाणी जान....

हे सज्जन जीव, ज्ञानी जीव ! जिनवाणी को जानो। उसका अभ्यास करो तथा अनादिकाल से जो विभाव भागों में बुद्धिलगी हुई है उसका अंत करो ।

हे जीव ! जिनवाणी में आयी हुये द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की कथनी को पहचानो क्योंकि इसके ज्ञान द्वारा ही अपने और पराये का समस्त भेद ज्ञात होता है।

पूर्व में जिन जीवों ने जिनवाणी को जाना अर्थात् जिनवाणी के उपदेश अनुसार श्रद्धान किया उनको ही आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई और अब जो जीव जिनवाणी को जानकर तद्रूप आचरण करेंगे तो वे भी निश्चित ही मोक्षपद को प्राप्त करेंगे।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि जैसे शिवभूति मुनिराज ने दाल और छिलके की भिन्नता के सदृश्य आत्मा और देह के भेद ज्ञान से भावभाषन करके केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया इसलिये हे प्रबुद्धजीवों जिन वचनों का निरन्तर रसपान करो जिससे तुम्हें भी आपार सुख अर्थात मोक्ष की प्राप्ति होगी ।

3 कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर...

कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर,
करि हैं भवोदधि पारा हो ।।टेक.।।

भोग उदास जोग जिन लीनों, छाँडि परिग्रह भारा हो।
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो, विषय कषाय निवारा हो ।।१।।
कबधौं...

कंचन काँच बराबर जिनके, निंदक बंदक सारा हो।
दुर्धर तप तपि सम्यक निज घर, मनवचतन कर धारा हो ।।२।।
कबधौं...

ग्रीष्म गिरि हिम सरिता तीरै, पावस तरुतल ठारा हो।
करुणाभीन चीन त्रसथावर, ईर्यापंथ समारा हो ।।३।।
कबधौं...

मार मार व्रत धार शील दृढ,मोह महामल टारा हो।
मास छास उपास वास वन, प्रासुक करत अहारा हो ।।४।।
कबधौं...

आरत रौद्र लेश नहिं जिनके,धर्म शुकल चित धारा हो।
ध्यानारूढ़ गूढ़ निज आतम,शुद्ध उपयोग विचारा हो ।।५।।
कबधौं...

आप तरहिं औरन को तारहिं,भवजलसिंधु अपारा हो।
'दौलत' ऐसे जैन–जतिन को,नित प्रति धोक हमारा हो ।।६।।
कबधौं.।

अहो ! संसार सागर से पार लगाने वाले दिगम्बर मुनिराजों के दर्शन मुझे कब होंगे ।

जिन मुनिराजों ने पंचेन्द्रिय के विषयभोगों से विरक्त होकर होकर योग धारण किया और समस्त प्रकार के परिग्रह के भार का त्याग कर दिया है। तथा जिन्होंने इन्द्रियों के दमन द्वारा अर्थात उनको वश में करके मदरूपी कषाय का वमन कर दिया है । तथा सभी विषय कषायों को नष्ट किया है - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जिनके लिये स्वर्ण और काँच अर्थात् अनुकूलता और प्रतिकूलता में कोई अन्तर नहीं है, निंदा करने वाले और प्रशंसा करने वाले दोनों समान हैं, जो मन-वचन-काय की एकाग्रता से कठिन सम्यक तप करके अपने निज घर अर्थात् आत्मा में लीन हो गये हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जो ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के शिखर पर, शीत ऋतु में नदी के किनारे और वर्षा के मौसम में वृक्षों के नीचे विराजमान होकर तप करते हैं। जो दयालु होकर त्रस और स्थावर जीवों को अच्छी तरह देखकर ईर्यापथ से समिति पूर्वक गमन करते हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जो काम को पराजित करके दृढ़ शील व्रत का पालन करते हैं और जिन्होंने मोह रूपी मैल का प्रक्षाल किया है, जो छः-छः महीने तक उपवास करते हुये जंगल में रहते हैं और तद्दुपरांत प्रासुक आहार ही ग्रहण करते हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जिनके किंचित मात्र भी आर्त-रौद्रमय परिणाम नहीं है, तथा जिन्होंने धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को चित्त में धारण किया है, जो अपनी आत्मा के ध्यान में ही अर्न्तलीन हुये हैं और शुद्ध उपयोग में ही सदा विचरण करते हैं - ऐसे मुनिराज के दर्शन कब होंगे ?

जो स्वयं तो संसार से पार होंगे ही और अन्य संसारीजनों को भी अपार भवसागर से पार कराने में निमित्त हैं, अतः दौलतरामजी यहां कहते हैं कि ऐसे जैन साधुओं को यतियों को निरन्तर हमारा नमस्कार हो।

4

काल अचानक ही ले जायेगा...

काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहेना क्या ।।
छिन हू तोकों नाहिं बचावै तो सुभटन का रखना क्या (रे) ।।
काल अचानक.....

रंच संवाद करन के काजै, नर्कन में दुःख भरना क्या ।
कुलजन पथिकनि के हित काजै जगत जाल में परना क्या ।।
काल अचानक....

इन्द्रादिक कोउ नाहिं बचैया, और लोक का शरणा क्या (रे) ।।
निश्चय हुआ जगत में मरना, कष्ट परै तब डरना क्या (रे) ।।
काल अचानक.....

अपना ध्यान करत खिर जावै, तौ कर्मनि का हरना क्या ।
अब हित करि, आर्त तजि 'बुधजन', जनम जनम में जरना क्या ।।
काल अचानक....

हे जीव ! यह काल अर्थात् मृत्यु अचानक ही तुझे ले जायेगी इसलिये इस संसार में बेहोश होकर मत रहो।

हे प्राणी मृत्यु के आने पर ! जो एक क्षण भी तुझे नहीं बचा सकते ऐसे योद्धाओं को अपने पास क्यों रखना ? अर्थात् उनको रखने से क्या फायदा ।

हे जीव ! लौकिक के जरा से वाद-विवाद के कारण नरक गति के दुःखों को क्यों सहते हो और परिवार - कुटुम्बीजनों के हित के लिये स्वयं संसार जाल में फंसना उचित नहीं है।

हे चेतन! जब इन्द्र जैसे बलशाली व्यक्ति भी तुझे नहीं बचा सकते तो जगत के अन्य लोगों से तो शरण की क्या आशा रखना ? इस जगत में मरना ही है तो कष्ट के आने पर या रोगादि-मृत्यु आदि आने पर उनसे घबराने से क्या फायदा ।

हे जीव ! जो कर्म निज आत्म ध्यान से तुरंत ही नष्ट हो जाते हैं तो ऐसे कर्मों की नष्ट करने की चिन्ता क्यो करना । बुधजन कवि तो कहते है कि आर्त-रौद्र, राग-द्वेष के परिणामों का त्यागकर अपना हित करो तो जन्म-जन्म के दुःखों को सहन नहीं करना पड़ेगा।

5 साधो ! छांडो विषय विकारी...

साधो ! छांडो विषय विकारी। जातैं तोहि महा दुःखकारी...
जो जैन धर्म को ध्यावै, सो आतमीक सुख पावै ।। साधो.।।

गज फरस विषैं दुःख पाया, रस मीन गंध अलि गाया।
लखि दीप शलभ हित कीना, मृग नाद सुनत जिय दीना ।। साधो.।१।

ये एक एक दुःखदाई, तू पंच रमत है भाई।
यह कौनें, सीख बताई, तुमरे मन कैसैं आई ।। साधो.।२।

इनमांही लोभ अधिकाई, यह लोभ कुगति को भाई।
सो कुगति मांही दुख भारी, तू त्याग विषय मतिधारी ।। साधो.।३।

ये सेवत सुख से लागैं, फिर अन्त प्राण को त्यागैं।
तातैं ये विषफल कहिये, तिन को कैसे कर गहिये ।। साधो.।४।

तब लौं विषया रस भावै, जब लौं अनुभव नहिं आवै।
जिन अमृत पान ना कीना, तिन और रसन चित दीना ।। साधो.।५।

अब बहुत कहां लौं कहिए, कारज कहि चुप ह्वै रहिये।
ये लाख बात की एक, मत गहो विषय की टेक ।। साधो.।६।

जो तजै विषय की आशा, 'द्यानत' पावै शिव वासा।
यह सतगुरु सीख बताई, काहू बिरेले जिय आई ।। साधो.।७।

हे सज्जन पुरुष! जिन विकारी विषयों के सेवन से तुमको महादुःख प्राप्त होता है उनका त्याग करो। जो जैनधर्म को ध्याता है अर्थात् उसके मार्ग अनुसरण करता है वह आत्मा के सच्चे सुख को प्राप्त करता है।

जैसे-हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय लोभ में गडडे में गिरकर, मछली रसना इन्द्रिय के विषय लोभ में कांटे में फंसकर, भंवरा सुगन्ध के लोभ में फूल में बंद होकर, पतंगा चक्षु इन्द्रिय के विषय के लोभ में अग्नि में जलकर और मृग कर्ण इन्द्रिय के विषय के लोभ में शिकारी के चंगुल में फंसकर अपने प्राण गंवा देते हैं ।

ये तो एक-एक इन्द्रिय के लोभ के वश अपने प्राण गंवाते हैं और तुम तो पाँचों इन्द्रियों के विषयों में रमण कर रहे हो - हे जीव ! यह तुम्हें किसने सिखाया और इनको भोगने की बुद्धि तुमने कहाँ से प्राप्त की ? अतः इन विषय विकार का त्याग करो।

पाँच इन्द्रियों के विषयों में लोभ की अधिकता है और लोभ की वासना ही दुर्गति का मूल कारण है और इन गतियों में महादुःख सहन करने पड़ते हैं इसलिये हे ज्ञानीजीव ! तुम इनका त्याग करो।

ये पाँच इन्द्रियां सेवन के समय तो सुख रूप प्रतीत होती है परन्तु इनके सेवन से अंत में अपनी ही हानि है इसलिये इन्हें विषफल ही कहा है । अतः हे जीव ! इन विषफलों का तुम कैसे सेवन कर सकते हो अर्थात् इन विषय विकार का त्याग ही श्रेष्ठ है ।

तथा जब तक इन विषय कषाय का रस आता है तब तक आत्मा का अनुभव भी नहीं हो सकता । और जिनने अपनी आत्मा के अमृत रस का पान नहीं किया है उनका चित्त सदैव विषय-कषायों के रस में ही रमता हैं।

अब इनकी बात कितनी कहें, इन विषयों का फल कहकर मौन हो जाना चाहिये और विषय - भोगों की आशा नहीं करना चाहिये - यही लाख बात की एक बात अर्थात् सार है।

द्यानतरायजी कहते हैं कि जो जीव विषयों की परवषता का त्याग करता है उसे मोक्ष का सुख प्राप्त होता है। दिगम्बर मुनिराजों ने भी यही शिक्षा दी है जो विरले जीवों को ही सुहाती है ।

6

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान...

करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान,
नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायके, करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।
देखन जाननहार आप लखि, देहादिक पर मान ।।
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।
मोह राग रुष अहित जान तजि, बंधहु विधि दुःखदान ।।
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।
निज स्वरूप में मगन होयकर, लगन विषय दो भान ।।
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।
'भागचन्द' साधक ह्वै साधो, साध्य स्वपद अमलान ।।
करो रे भाई तत्त्वारथ श्रद्धान ।।

हे भाई! तुमने दुलर्भ मनुष्य भव, उत्तम कुल और उत्तम क्षेत्र को प्राप्त किया है इसलिये आत्महित करने में प्रयोजन भूत जीवादि सात तत्वों के सम्यक् अर्थ को पहचानो और उसकी ही श्रद्धा करो।

हे भाई ! स्वयं को जानने-देखने वाला अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा अनुभव करो और शरीर आदि को परद्रव्य मानो तथा मोह-राग-द्वेष आदि आश्रव परिणामों को अहितकारी जानकर इनका त्याग करो, क्योंकि ये कर्म बंध के कारण होने से बहुत दुःख प्रदान करने वाले हैं।

हे जीव! अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर विषयों की रुचि का त्याग करो। भागचन्द कवि कहते हैं कि - वास्तविक साधक अर्थात् साधु वही है जो अपने निर्मल निज आत्मा को ही साधता है अतः हे जीव! सर्व दुःखों से मुक्ति के लिये तत्वों का यर्थात् श्रद्धान-ज्ञान करो ।

7

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो...

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो, रूप न जानै रे।।टेक।।

अविचल चिनमूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे।।टेक।।

तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे।
ये पर इनहिं वियोग योग में, यौं ही सुख दुःख मानै रै।।१।।टेक।।

चाह न पाये, पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे।
विपतिखेत विधिबंधहेत पै, जान विषय रस खानै रे।।२।।टेक।।

नर भव जिनश्रुतश्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे।
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुर बखानै रे।।३।।टेक।।

हे प्राणी! तुम परपदार्थों में ही रमण कर रहे हो और अपना ज्ञानानंद स्वरूप नहीं जानते। तुम तो अविचल, चैतन्यमूर्ति और अमूर्तिक तत्व हो तथा जिसके निश्चय करने से पूर्ण सुख प्राप्त होता है।

हे चेतन! शरीर, धन, भाई, पिता, पुत्र, माता आदि ये सब तेरे से पर हैं और तुम इनको अपना समझ कर इनके संयोग वियोग में अर्थात् मिलने पर सुखी और वियोग होने पर दुखी हो रहे हो।

हे चेतन! ये इन्द्रिय विषय इच्छा करने पर प्राप्त नहीं होते हैं और प्राप्त होते भी हैं तो ये तृष्णा को ही बढ़ाते हैं, तथा इनके सेवन के कारण अपना ज्ञान भी हीन होता जाता है और ये घोर विपत्ति को उत्पन्न करने वाले कर्मबन्ध के कारण हैं । ऐसा जानकर भी तू इनको सुख का भण्डार समझता है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे बुद्धिमान चेतन! अब तो तुझे मनुष्य जन्म और जिनवाणी श्रवण का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ है इसलिये अब तू अपना हित कर और श्रीगुरु जिसकी महिमा गाते हैं उस आतमज्ञान रूपी अमृत रस का पान कर।

8

घट में परमातम ध्याइये हो...

घट में परमातम ध्याइये हो, परम धरम धनहेत....
ममता बुद्धि निवारिये हो, टारिये भरम निकेत ।। घट में. ।।

प्रथमहिं अशुचि निहारिये हो, सात धातु यह देह।
काल अनन्त सहे दुःख जानैं, ताको तजो अब नेह ।।१।।

घट में....

ज्ञानावरणादिक जमरूपी, निजतैं भिन्न निहार।
रागादिक परिनति लख न्यारी, न्यारो सुबुध विचार ।।२।।

घट में....

तहाँ शुद्ध आतम निरविकल्प, ह्वै करि तिसको ध्यान।
अलप कालमें घाति नसत हैं, उपजत केवलज्ञान ।।३।।

घट में....

चार अघाति नाशि शिव पहुँचे, विलसत सुख जु अनन्त।
सम्यक दरसनकी यह महिमा,'द्यानत' लह भव अन्त ।।४।।

घट में....

हे जीव! परम धर्म अर्थात पूर्ण सुख रूपी धन को प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा में विराजमान परमात्म स्वरूप का ध्यान करो। पर द्रव्यों के प्रति ममत्व परिणाम को दूर हटाकर इस अनादि के भ्रम को टालो ।

जिस देह में अपनेपन के कारण अनन्त काल तक दुःख सहन किये सर्वप्रथम सप्त कुधातु में अर्थात् मल-मूत्र आदि का भंडार उस देह को अशुचि जानो और इसके प्रति मोह का त्याग करो।

ज्ञानावरण आदि आठ कर्म यम के समान हैं; इनसे अपने को भिन्न देखो और रागादि परिणामों को अपनी आत्मा से भिन्न अनुभव करो - यही ज्ञानियों का विचार है।

फिर निर्विकल्प शुद्ध आत्मा जो कि तेरा स्वरूप है उसका ध्यान करो जिसके ध्यान से अल्प काल में चार घाति कर्मों का नाश होता है और केवलज्ञान प्रगट होता है।

फिर चार अघाति कर्मों का नाश कर जीव मोक्ष पहुँच जाता है जहाँ अनन्त काल के लिये अनंत सुख का भोग ही होता है। द्यानतरायजी कहते हैं कि यह सब सम्यक्दर्शन की ही महिमा है जिससे संसार के दुःखों का अन्त होता है।

9

हमको कछू भय ना रे...

हमको कछू भय ना रे, जान लियो संसार ।। टेक।।

जो निगोदमें सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मँझार।
निश्चय भेद कछू भी नाहीं, भेद गिने संसार ।।१।।

हमको कछू भय...

परवश ह्वै आपा विसारिके, राग दोषकौं धार।
जीवत मरत अनादि कालतैं, यौंही है उरझार ।।२।।

हमको कछू भय...

जाकरि जैसे जाहि समयमें, जो होवत जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार ।।३।।

हमको कछू भय...

अग्नि जरावै पानी बोवै, बिछुरत मिलत अपार।
सो पुद्गल रूपी मैं बुधजन, सबकौ जाननहार ।।४।।

हमको कछू भय...

कवि कहते हैं कि मुझे अब किसी भी प्रकार का डर या भय नहीं है क्योंकि अब मैंने संसार के स्वरूप को जान लिया है।

जैसा मैं निगोद की अवस्था में था वैसा ही अभी हूँ तथा वैसा ही मोक्ष में रहने वाला हूँ । निश्चय दृष्टि से देखें तो निगोद और मोक्ष की अवस्था में कोई अन्तर नहीं है, और जो इनमें भेद गिनते हैं वह सब व्यवहार दृष्टि वाले संसारी हैं।

हे जीव ! तू पर द्रव्यों के वशीभूत होकर आत्मा को भूलकर राग-द्वेष के परिणाम ही करता आ रहा है । जिसके कारण तू अनादि काल से जन्म - मरण के महादुःख पीड़ा को भोग रहा है।

जिस द्रव्य का जिस विधि से, जिस प्रकार से, जिस समय में जो होना सुनिश्चित है, वह होकर ही रहेगा और इसमें कुछ भी परिवर्तन संभव नहीं है - ऐसा मुझे आज निर्णय हो चुका है ।

बुधजन कवि कहते हैं कि जैसे अग्नि का स्वरूप जलाने का और पानी का स्वरूप डुबोने का है उसी प्रकार इस पुदगल शरीर का प्रभाव बिछुड़ने और मिलने का है और मैं तो इन सबको जानने वाला आतमराम हूँ।

10

जिया तुम चालो अपने देश...

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर थारो शुभ थान
जिया तुम चालो अपने देश ।।

लख चौरासी में बहु भटके लह्यो न सुख को लेश ।।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

मिथ्या रूप धरे बहु तेरे, भटके बहुत विदेश ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

विषयादिक से बहु दुःख पाये, भुगते बहुत कलेश ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

भयो तिर्यंच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेष ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

'दौलतराम' तोड़ जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश ।
जिया तुम चालो अपने देश ।।

यहां कवि दौलतरामजी इस जीव को संबोधित कर रहे हैं कि हे जीव! तुम अपने स्वदेश चलो। तुम्हारा अपना शुभ देश अर्थात् शुभ स्थान तो शिवपुर (मोक्ष) ही है ।

यहाँ संसार में तो तुम चौरासी लाख योनियों में बहुत भटक चुके हो किन्तु तुम्हें लेश मात्र भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई है, अतः अब तो तुम अपने स्वदेश अर्थात् शिवपुर चलो।

हे जीव! तुमने अनादिकाल से अनेक प्रकार के मिथ्यारूपों को धारण करके अन्य अनेक यौनियों में बहुत भ्रमण किया है तथा जहाँ तुमने निमित्त से अनन्त दुःख ही उठाये हैं अतः अब तुम अपने उत्तम देश शिवपुर को चलो।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि हे जीव! तुम इस संसार में अनेक प्रकार के वेश बना-बनाकर तिर्यंच, नारकी, मनुष्य और देव चर्तुगतियों में सब कुछ बन चुके हो, अतः अब तो इस असार संसार से सम्बन्ध तोड़ो और सद्गुरु के उपदेश को सुनो-समझो। हे जीव ! अब तो तुम अपने देश शिवपुर को चलो ।

पांचवा एलबम

अध्यात्म संजीवनी

11

प्रभु थारी आज महिमा जानी...

प्रभु थारी आज महिमा जानी ।।टेक.।।

अब लो मोह महा मद पिय मैं, तुमरी सुधि विसरानी।
भाग जगे तुम शांति छवी लखि, जडता नींद बिलानी ।१। प्रभु.

जगविजयी दुःखदाय रागरुष, तुम तिनकी थिति भानी।
शांतिसुधा सागर गुन आगर, परम विराग विज्ञानी ।२। प्रभु.

समवसरन अतिशय कमलाजुत, पै निर्ग्रन्थ निदानी।
क्रोध बिना दुठ मोह विदारक, त्रिभुवन पूज्य अमानी ।३। प्रभु.

एक स्वरूप सकल ज्ञेयाकृत, जग–उदास जग–ज्ञानी।
शत्रु मित्र सब में तुम सम हो, जो दुःख सुख फल यानी ।४। प्रभु.

परम ब्रह्मचारी है प्यारी, तुम हेरी शिवरानी।
है कृतकृत्य तदपि तुम शिवमग, उपदेशक अगवानी ।५। प्रभु.

भई कृपा तुमरी तुममें तैं, भक्ति सु मुक्ति निशानी।
है दयाल अब देहु 'दौल' को, जो तुमने कृति ठानी ।६। प्रभु.

हे प्रभो ! मैं आज आपकी महिमा को जान गया हूँ। अब तक मोहरूपी महामद का पान करके मैं आपके स्वरूप को भूला हुआ था, किन्तु आज मेरे भाग्य जगे हैं अर्थात् मेरा ऐसा पुण्योदय आया है जो कि मुझे आपकी शान्त मुद्रा के दर्शन हुये और जिससे मेरी अनादिकालीन जड़ता रूपी निद्रा दूर हो गई है।

हे प्रभो! आपने सारे संसार को जीत लेने वाले और महादुःख देने वाले राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है अतः आप शान्तिरूपी अमृत के सागर हैं, गुणों के भण्डार हैं, परम वीतराग विज्ञान स्वरूप हैं।

हे प्रभो! यद्यपि समवशरण आदि अतिशय लक्ष्मी आप के संयोग में हैं, तथापि आप पूर्णतः निग्रन्थ अर्थात् अपरिग्रही हैं। आप क्रोध से रहित हैं, दुष्ट मोह के विनाशक हैं, और मान से रहित तीनों लोकों द्वारा पूज्य हैं ।

हे प्रभो! आप केवलज्ञान में सकल ज्ञेय पदार्थों को जानते हुये भी एक स्वरूप में ही रहने वाले हैं, जगत से उदासीन रहकर भी सारे जगत के ज्ञाता हैं तथा दुःख-सुख के पल में निमित्तभूत ऐसे शत्रु-मित्र आदि को समान दृष्टि से देखने वाले हैं।

हे प्रभो! आप परम ब्रमचारी हैं, फिर भी आपने अत्यन्त प्रिय मुक्तिरानी को खोजकर प्राप्त किया है तथा आप कृतकृत्य हो गये हैं, फिर भी जगत के जीवों के लिये मोक्षमार्ग के अग्रणी उपदेशक हैं।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे प्रभो! अब आपकी कृपा से मुझमें आपके प्रति भक्ति उत्पन्न हुई है जो कि मोक्ष का उत्तम दशा प्रदान कीजिये। हे प्रभो! आप दयालु होकर मुझे भी वही उत्तम दशा दीजिये, जो आपने अपने में प्रकट की है।

12

और सबै जगद्वन्द मिटावो...

और सबै जगद्वन्द मिटावो,
लो लावो जिन आगम–ओरी ।।टेक।।
है असार जगद्वन्द बन्धकर,
यह कछु गरज न सारत तोरी ।
कमला चपला, यौवन सुरधनु,
स्वजन पथिकजन क्यों रति जोरी ।।१।।टेक।।
विषय कषाय दुःखद दोनों ये,
इनतैं तोर नेह की डोरी ।
परद्रव्यनको तू अपनावत,
क्यों न तजै ऐसी बुधि भोरी ।।२।।टेक।।
बीत जाय सागरथिति सुरकी,
नरपरजायतनी अति थोरी ।
अवसर पाय 'दौल' अब चूको,
फिर न मिलै मणि सागर बोरी ।।३।।टेक।।

हे जीव ! जगत के अन्य सब दन्द-फन्द को छोड़ो और अपनी ध्यान रूपी लौ को मात्र जिनागम की ओर अग्रसर करो ।

क्योंकि जगत के सारे द्वन्द-फन्द असार हैं और बन्ध के कारण हैं। उनसेतुम्हारा कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है। लक्ष्मी चंचल है, यौवन इन्द्रधनुष के समान (सुन्दर किन्तु क्षणभंगुर) है और कुटुम्ब-परिवार के लोग पथ के सहयात्री के समान हैं। तुम इन सबसे व्यर्थ मोह क्यों रखते हो।

हे भाई! विषय और कषाय - ये दोनों ही महादुःखदायी है। तुम इनसे स्नेह सम्बन्ध तोड़ दो। जो तुम परद्रव्यों को अपना बनाने का प्रयास करते हो, वह व्यर्थ अज्ञानता ही है अतः तुम ऐसी सरल (खोटी है) बुद्धि को क्यों नहीं छोड़ते हो ।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे भाई! स्वर्ग के देवों की सागरोपम जैसी लम्बी आयु भी एक दिन व्यतीत हो जाती है, तो तेरी यह मनुष्य पर्याय का समय तो बहुत ही कम है, अतः यदि तुम अब भी ऐसा अमूल्य अवसर पाकर भी चूक गये तो समझ लो कि समुद्र में फेंकें हुये चिंतामणि रत्न के समान यह अवसर पुनः मिलनेवाला नहीं है।

13 ऐसे जैनी मुनि महाराज...

ऐसे जैनी मुनि महाराज सदा उर मो बसो। टेक।।

जिन समस्त पर द्रव्यनि माहीं, अहं बुद्धि तजि दीनी।
गुण अनन्त ज्ञानादिक मम, पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी।।
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

जे निज बुद्धि पूर्व रागादिक, सकल विभाव निवारैं।
पुनि अबुद्धिपूर्वक नाशन को, अपनी शक्ति सम्हारैं।।
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

कर्म शुभाशुभ बंध उदय में, हर्ष विषाद न राखैं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, भाव सुधारस चाखैं।।
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

पर की इच्छा तजि निज बल सजि, पूरब कर्म खिरावैं।
सकल कर्म तें भिन्न अवस्था, सुखमय लखि चित चावैं।।
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

उदासीन शुद्धोपयोग रत, सबके दृष्टा ज्ञाता।
बाहिज रूप नग्न समता सर, 'भागचन्द' सुख दाता।।
ऐसे जैनी, मुनि महाराज सदा.....

ऐसे जैन मुनि अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जिन मुनिराजों ने समस्त परद्रव्यों में अपनेपन की बुद्धि को छोड़ दिया है और अपने ज्ञान आदि अनन्त गुणों को पहचानकर अपनी आत्मा की अनुभूति की है - ऐसे दिगम्बर मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जिन्होंने बुद्धिपूर्वक होने वाले रागादि समस्त विकारी भावों का तो निवारण कर दिया है और अबुद्धिपूर्वक होने वाले विकारी परिणामों के नाश के लिये उद्यमवन्त हैं - ऐसे जैन मुनि सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो शुभ-अशुभ कर्म के बंध और उदय में हर्ष व शोक का परिणाम नहीं करते और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र के तप द्वारा निज भावों के अमृतरस का भोग करते हैं - ऐसे तपस्वी मुनिराज सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो अपनी शक्ति के बल से परद्रव्यों की इच्छा को त्यागकर पूर्व में उपार्जित कर्मों को नष्ट करते हैं और समस्त कर्मों से भिन्न पूर्ण सुखमय अवस्था को ही प्राप्त करना चाहते हैं - ऐसे वीतरागी संत सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

जो बाह्य जगत से उदासीन होकर शुद्धोपयोग में लीन रहते हैं और समस्त विश्व के ज्ञाता-दृष्टा हैं, तथा बाहर में तो नग्न हैं और अंतर में समता रस के धनी हैं, तथा जो सभी जीवों को आत्मिक सुख प्रदान करने वाले हैं उन मुनिराजों के लिये कवि भागचन्दजी कहते हैं कि - ऐसे जैन मुनि सदा मेरे हृदय में विराजमान रहें।

14

जे दिन तुम, विवेक बिन खोये...

जे दिन तुम, विवेक बिन खोये ।।टेक।।

मोह वारुणी पी अनादि तें, पर पद में चिर सोये।
सुख करंड चित् पिण्ड आप पद, गुण अनन्त नहिं जोये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

होय बहिर्मुख ठानि राग रुष, कर्म बीज बहु बोये।
तसु फल सुख दुःख सामिग्री लखि, चित्त में हरसे रोये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

धवल ध्यान शुचि सलिल पूर तें, आस्रव मल नहिं धोये।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

अब निज में निज जान, नियत तहाँ, निज परिणाम समोये।
यह शिव मारग, सम रस सागर, 'भागचन्द' हित तो ये ।।
जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

हे जीव! तुमने बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया है।

हे चेतन! अनादि काल से मोह की मदिरा का पान करके तुम बाहर के पदों में अर्थात् पर स्थान में सो रहे हो और तुमने सुख के सागर, चैतन्य पिंड ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा जो कि स्वास्थान अर्थात् अपना पद है उसके अनन्त गुणों को नहीं जाना। और बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

हे जीव! तुमने बहिर्मुख होकर रागादि विकारी भाव के कर्ता बनकर कर्म बंध के बीज ही बोये है और इन कर्मों के फल में मिलने वाली सुख-दुख की सामग्री को देखकर मन में सुखी-दुखी होते रहे हो । हे जीव ! तुमने बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

हे चेतन! तुमने अपने निर्मल ध्यान रूपी जल से आस्रव रूपी मलिन भावों का परिहार नहीं किया, न ही परद्रव्य के संग्रह करने की इच्छा को वश में किया और अनेक प्रकार के परिग्रह को भी एकत्रित करते रहे और बहुत समय विवेक के बिना गंवा दिया।

अतः कविवर भागचन्दजी यहां कहते हैं कि - हे चेतन! अब अपने में अपने स्वरूप को जानों वहीं पर रमण करो और अपनी परिणामों की संभाल करो - क्योंकि यह मोक्षमार्ग ही समता रस का समुद्र है और इसमें ही तुम्हारा हित है । अतः अब इन क्रियाओं को त्यागो और बिना विवेक के जो तुमने समय गंवाया उसकी संभाल करो ।

15

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै...

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै,
जाको जिनवानी न सुहावै ।।टेक.।।

वीतराग से देव छोडकर, भैरव यक्ष मनावै।
कल्पलता दयालुता तजि, हिंसा इन्द्रायनि वावै ।।१।। ऐसा।।

रुचै न गुरु निर्ग्रन्थ भेष बहु, –परिग्रही गुरु भावै।
परधन परतियको अभिलाषै, अशन अशोधित खावै ।२। ऐसा।।

पर की विभव देख ह्वै सोगी, परदुःख हरख लहावै।
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै ।।३।। ऐसा।।

ज्यों गृह में संचै बहु अघ त्यों, वनहू में उपजावै।
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै ।।४।। ऐसा।।

आरम्भ तज शठ यंत्र मंत्र करि, जनपै पूज्य मनावै।
धाम वाम तज दासी राखै, बाहिर मढ़ी बनावै ।।५।। ऐसा।।

नाम धराय जती तपसी मन, विषयनि में ललचावै।
'दौलत' सो अनन्त भव भटकै, ओरन को भटकावै ।६। ऐसा।।

जिस जीव को जिनवाणी अच्छी नहीं लगती है, तथा दुर्लभ मनुष्य पर्याय मिलने पर भी मोह महामद पीने वाला जीव अधोगति में क्यों नहीं जायेगा ।

जो श्रेठ वीतरागी देव को छोड़कर भैरव, यक्ष आदि कुदेवों की पूजा करता है, तथा दया-करूणा की कल्पबेल को छोड़कर हिंसा के इन्द्रायण (बट) बीज को बोता है।

जिसे निर्ग्रन्थ गुरु तो अच्छे नहीं लगते अपितु अनेक भेष धारण करने वाले परिग्रही गुरु ही अच्छे भाषित होते हैं, वह जो सदा परधन व परस्त्री की अभिलाषा करता है, तथा बिना शोधा हुआ अर्थात् अशुद्ध भोजन ही करता है।

दूसरों के वैभव को अर्थात् पराई सम्पत्ति को देखकर दुःखी होता है, वह दूसरों के दुःख को देखकर प्रसन्न होता है, धर्म कार्य के लिये जरा भी धन खर्च नहीं करता किन्तु विषय भोगों के लिये घूमने फिरने आदि में लाखों रुपये पानी की तरह बहा देता है।

वन में अर्थात् एकांत स्थान में जाकर भी घर की भांति बहुत पाप एकत्रित करता है, वस्त्र का त्यागकर दिगम्बर कहलाता है परन्तु रागद्वेष होने से अपने शरीर को बाघ आदि की खाल से ढांकता है।

आरम्भ का त्यागी होकर दुष्ट भाग से तंत्र-मंत्र करता है,और अज्ञानी लोगों से अपने को पुजवाता है । नगर के घर संसार का तो त्याग करता है मगर वन में कुटिया बनवाता है एवं दासी रखता है।

यति, तपस्वी जैसे ऊँचे नाम को धारण करते हुये जिसका मन सदैव विषयों में ललचाता है। ऐसे तीव्र मोही जीव के लिये कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि वह स्वयं भी अनन्त जन्मों तक संसार में भटकता है और दूसरों को भी भटकाता है। अतः ऐसा जीव निश्चित ही अधोगति में जायेगा ।

16

छाँड़त क्यों नहिं रे...

छाँडत क्यों नहि रे, हे नर रीति अयानी।
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी।।

विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुःख सुख जाति न जानी।
शर्म चहै न लहै शठ ज्यौं, घृत हेतु-विलोवत पानी।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

तन धन सदन स्वजन जन तुझसों, ये पर्याय विरानी।
इन परिणमन विनश उपजन सों, तैं दुःख सुखकर मानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

इस अज्ञान तें चिर दुःख पाये, तिनकी अकथ कहानी।
ताको तज, दृग ज्ञान चरण भज, निज परिणति शिवदानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

यह दुर्लभ नर भव सुसंग लहि, तत्त्व लखावन वाणी।
'दौल' न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी।।
छाँडत क्यों नहिं रे, हे नर.....

हे नर ! तू अपनी अज्ञान दशा को क्यों नहीं छोड़ देता ? सदगुरू तुम्हें बार-बार शिक्षा देकर सचेत कर रहे हैं, किन्तु तू आनाकानी (बहाने) कर रहा है।

हे जीव ! तू न तो विषयों का त्याग करता है, और न ही सम्यग्ज्ञान एवं संयम की उपासना करता है और न ही दुःख-सुख के सच्चे स्वरूप को जानता है। यही कारण है कि तू सुख तो चाहता है किन्तु उस की प्राप्ति नहीं कर पाता है; उसी प्रकार जिस प्रकार कोई व्यक्ति घी प्राप्त करने के लिये पानी को बिलोने रूपी कार्य तो करता परंतु पानी के बिलोने से घी कैसे प्राप्त होगा ।

हे मनुष्य! शरीर, धन, मकान, परिवारजन, मित्र आदि तो तुझसे अत्यंत भिन्न पर्याय हैं और तूने व्यर्थ ही उनके नष्ट और उत्पन्न होने को अपने दुःख-सुख का कारण मान रखा है

और इसी अज्ञान के कारण तूने अनादि से इतने दुःख प्राप्त किये हैं कि उनकी कथा कही नहीं जा सकती। अतः अब तू इस अज्ञान कार्य को त्याग दे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना कर - यही आत्मपरिणति तुझे मुक्ति को प्रदान करने वाली है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे नर! अब तो तूने इस दुर्लभ मनुष्य भव को, सत्संगति को और तत्व को दर्शाने वाली जिनवाणी को भी प्राप्त कर लिया है, अतः अब तो तू पर में ममता करना छोड़ और सुख को देने वाली समता को धारण करके सच्चा सुख प्राप्त कर।

17

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला...

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला, संग साथी नहीं कोई तेरा।
भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।।

अपना सुख दुःख आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भये, सब बिछुर जात हैं, विघट जात ज्यों मेला।।

भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।
रक्षक कोई न पूरन ह्वै, जब आयु अन्त की बेला।

फूटत पार रुकत नहिं जैसे, दुद्धर जल को ठेला।।
भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

तन धन जोबन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजाल को खेला।
'भागचन्द' इमि लखकर भाई, हो सतगुरु को चेला।।

भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

हे जीव! वास्तव में अनेक प्रकार के संयोग में भी तू सदा अकेला ही भ्रमण करने वाला है, तेरा साथी कोई नहीं है। तू एकत्व को लिये हुये अकेला ही है ।

हे जीव! प्रत्येक प्राणी को अपना सुख-दुःख स्वयं अकेले ही भोगना पड़ता है इस कार्य में कोई कुटुम्बीजन साथ नहीं दे देते क्योकिं ये सब तो स्वार्थ के सगे है। जैसे मेला समाप्त होने पर सभी यात्री अलग-अलग स्थान पर चले जाते हैं। उसी प्रकार स्वार्थ सिद्ध हो जाने के बाद सभी कुटुम्बीजन भी साथ छोड़के चले जाते हैं ।

हे प्राणी! जिस प्रकार बांध के फूट जाने पर जल के तेज प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता उसी प्रकार जब आयु की समाप्ति का समय आता है तब कोई भी तेरी रक्षा नहीं कर सकता और न कोई तेरी आयु बढ़ाने में समर्थ हो सकता है ।

जिस प्रकार इन्दजाल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार शरीर, धन, यौवन आदि सब नाश को प्राप्त होते हैं इसलिये कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि - हे भाई! यह देखकर तू सच्चे गुरू अर्थात् दिगम्बर मुनिराज का शिष्यत्व स्वीकार कर और उनके वचनों को जीवन में धारण कर तभी तेरा कल्याण होगा ।

18

निर्ग्रन्थों का मार्ग...

निर्ग्रंथों का मार्ग हमको प्राणों से भी प्यारा है ...
दिगम्बर वेश न्यारा है...निर्ग्रन्थों का मार्ग ....।।

शुद्धात्मा में ही, जब लीन होने को, किसी का मन मचलता है,
तीन कषायों का, जब राग परिणति से, सहज ही टलता है,
वस्त्र का धागा...वस्त्र का धागा नहीं फिर उसने तन पर धारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रन्थों का मार्ग...

पंच इंद्रिय का विस्तार नहीं जिसमें, वह देह ही परिग्रह है,
तन में नहीं तन्मय, है दृष्टि में चिन्मय, शुद्धात्मा ही गृह है,
पर्यायों से पार... पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव का सदा सहारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा है...निर्ग्रन्थों का मार्ग....

मूलगुण पालन, जिनका सहज जीवन,निरन्तर स्व-संवेदन,
एक ध्रुव सामान्य में ही सदा रमते, रत्नत्रय आभूषण,
निर्विकल्प अनुभव...निर्विकल्प अनुभव से ही जिनने निज को श्रंगारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा... निर्ग्रन्थों का मार्ग...।।

आनंद के झरने, झरते प्रदेशों से,ध्यान जब धरते है,
मोह रिपु क्षण में, तब भस्म हो जाता, श्रेणी जब चढते हैं,
अंतर्मुहूर्त में.अंतर्मुहुर्त में ही जिनने अनन्त चतुष्टय धारा है,
दिगम्बर वेश न्यारा है... निर्ग्रन्थों का मार्ग.... ।।

हमें सकल परिग्रह त्यागी दिगम्बर मुनीश्वरों का मार्ग अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा है और उनकी दिगम्बर मुद्रा भी अत्यंत प्यारी है।

जब किसी साधक जीव का मन शुद्धात्मा में लीन होने का पुरूषार्थ करता है तब उसकी परिणति से अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्या- नावरण, प्रत्याख्यानावरण इन तीन कषाय चौकड़ी का अभाव सहज हो जाता है और अंतरंग में शुद्धोपयोग की अति निर्मल दशा होने पर बहिरंग में समस्त प्रकार के परिग्रह का त्याग हो जाता है अर्थात् परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ दशा हो जाती है।

ऐसे शुद्धापयोगी मुनिराज का उपयोग पंच इन्द्रियों के विषयों नहीं जाता, उनके लिये परिग्रह के रूप में मात्र देह ही है। शरीर के साथ होने पर भी वे मुनिराज शरीर में एकत्व नहीं करते, उनके लिये एकमात्र चितस्वरूपी आत्मा ही उपादेय है और वे अपनी आत्मा में ही निवास करते हैं। ऐसे मुनिराजों के लिये पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव आत्मा ही शरणभूत है।

वीतरागी मुनिश्वरों के जीवन में मूलगुणों का पालन सहज ही होता है उसके लिये उन्हें विकल्प नहीं करना पड़ता, वे निरन्तर आत्मा की अनुभूति करते हैं, वे सदा धुव्र आत्मा में ही रमण करते हैं, उनके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये रत्नत्रय ही श्रृंगार है और उन्होंने समस्त विकल्पों से परे आत्म अनुभव से ही अपना श्रृंगार किया है।

वीतरागी मुनिराज जब अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं तो उनके आत्म प्रदेशों से निरन्तर आनन्द का झरना झरता है अर्थात् वे अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर भोग करते हैं, शुद्धात्मा की एकाग्रता बढ़ने से क्षपक श्रेणी आरोहण करते हैं जिससे उनके चारित्र मोहनीय का सम्पूर्णतया नाश होता है और मात्र अंतमुहूर्त में ही वे अरहंत पद को प्राप्त करते हैं और उनके अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है।

19

तोहि समझायो सौ सौ बार

तोहि समझायो सौ सौ बार,
जिया तोहि समझायो सौ सौ बार।
देख सुगुरु की परहित में रति, हित उपदेश सुनायो।
तोहि समझायो.....

विषय भुजंग सेय दुःख पायो, पुनि तिन सों लिपटायो।
स्वपद विसार रच्यो पर पद में, मद रत ज्यों बौरायो।।
तोहि समझायो.....

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजे भ्रम, चाख समामृत, जो नित सन्त सुहायो।।
तोहि समझायो.....

अबहूँ समझ कठिन यह नरभव, जिनवृष बिना गमायो।
ते विलखें मणि डाल उदधि में, 'दौलत' सो पछितायो।।
तोहि समझायो.....

अनेक बार समझाने पर भी यह मोही जीव आत्म हित में नहीं लगता इसलिये कविवर कहते हैं कि हे जीव! अब तू श्रीगुरू की तरफ देख तो सही, परहित अर्थात् दूसरों के कल्याण की भावना होने के कारण श्रीगुरु तुझे समझाते हुये तेरे हित की बात कह रहें है।

तूने विषयरूपी सर्प के विष का सेवन करके बहुत दुःख पाया है, लेकिन फिर भी तू उन्हीं से प्रीति करता है। तू शराब के नशे में मस्त पागल व्यक्ति की भांति अपने वास्तविक पद (स्वरूप) को भूलकर परपद में ही लीन हो रहा है, ।

हे जीव! यह शरीर, धन, मित्र आदि तेरे नहीं हैं, तू उनसे व्यर्थ ही स्नेह करता है। तू ऐसे मिथ्याभ्रम को छोड़कर समतारूपी अमृत रस का पान क्यों नहीं करता जो रस मुनिराजों को सदा सुहाता है।

कविवर दौलतरामजी कहते है कि यह मनुष्य भव मिलना बहुत दुर्लभ है। और जो जीव इस मनुष्य भव को जिनधर्म की आराधना के बिना गंवा देते हैं वे बाद में उसी प्रकार विलाप करते हैं जिस प्रकार कोई चिंतामणि रत्न को समुद्र में फेंककर विलाप करता है और अंत में पछताता है।

20

लागा आतमराम सो नेहरा...

लागा आतमराम सों नेहरा....
ज्ञानसहित मरना भला रे, छूट जाय संसार।
धिक्कु! परौ यह जीवना रे, मरना बारंबार।।
लागा. ।।१।।

साहिब साहिब मुंहतैं कहते, जानें नाहीं कोई।
जो साहिबकी जाति पिछाने, साहिब कहिये सोई।।
लागा.।।२।।

जो जो देखी नैनौं सेती, सो सो विनसै जाई।
देखनहारा मैं अविनाशी, परमानन्द सुभाई।।
लागा. ।।३।।

जाकी चाह करैं सब प्रानी, सो पायो घटमाहीं।
'द्यानत' चिन्तामनि के आये, चाह रही कछु नाहीं।।
लागा. ।।४।।

अब मुझे अपनी आत्मा से प्रीति लग गई है ।

भेद विज्ञान प्राप्त करके मरण भी हो जाये तो भी कोई चिंता की बात नहीं है क्योंकि इससे संसार से मुक्ति मिलती है। लेकिन अज्ञान सहित जीवन यह तो धितक्कार करने योग्य है, जिससे बार-बार मरण प्राप्त होता है।

सभी लोग साहिब अर्थात् आतमा आतमा कहते हैं परन्तु उसका स्वरूप कोई नहीं जानता और जो आतमा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान करता है वह स्वयं आतमानुभवी बन जाता है।

हे जीव ! तुझे आंखों से जो पंचन्द्रिय के विषय दिख रहे हैं वे सभी विनाश को प्राप्त होने वाले है। और इन्हें जानने देखने वाला कभी नाश को प्राप्त न होने वाला अविनाशी परमानन्द स्वभावी ही मैं हूँ।

कविवर पण्डित द्यानतरायजी कहते हैं कि सभी प्राणी जिसकी चाह करते हैं वह सुख स्वयं के ही भीतर ही मौजूद है । अतः जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न के मिलने पर अन्य किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहती, वैसा ही आत्मस्वभाव रूपी चिंतामणि मैंने प्राप्त कर लिया है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust

302, Krishna Kunj, V.L. Mehta Marg, Vile Parle (West)

Mumbai - 400 056 INDIA

Tel. : +91 22 2613 0820 / 2610 4912

info@vitragvani.com www.vitragvani.com / vitragvanee /c/vitragvanii